सूर-पदावली

[सटिप्पणी]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन — सुलभ-साहित्य माला सं० ८

सूर-पदावली

[सटिप्पण]

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

मुद्रक

हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

चतुर्थ वार २०००]   संवत् १९८९   मूल्य ।)

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस 'सुलभ साहित्य-माला' के प्रकाशन का कार्य्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। "माला" के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—
साहित्य-मन्त्री,
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग।

महात्मा सूरदास

छप्पय

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी।
बचन, प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुकधारी॥
प्रतिबिम्बत दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जन्म कर्म गुन रूप सबै रसना जु प्रकासी॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि धरै।
श्रीसूर-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

—नाभाजी

कवि कुल गुरु भक्ताग्रगण्य सूरदासजी का जन्म लगभग सम्वत् १५४० में हुआ था। इनकी जन्मभूमि आगरा-मथुरा की सड़क पर रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाँव है। किसी किसी ने दिल्ली के पास सीही को इनका जन्म स्थान माना है। सूरदासजी गऊ-घाट पर रहते थे, और वह गऊघाट आगरा के ही पास है। इनके पिता का नाम रामदास था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। सरदार कवि ने इन्हें, महाकवि चन्द-वरदायी का वंशज मानकर ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु

'चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता' में इनका कोई ज़िकर नहीं है और 'वार्त्ता' ही प्रमाण कोटि में अधिकांशतः आ सकती है, क्योंकि उसे सूरदासजी के समकालीन गोसाईं गोकुलनाथ जी ने रचा था।

सूरदासजी जन्मान्ध नहीं थे पीछे अन्धे हो गये थे। गऊघाट पर यह श्रीवल्लभाचार्य जी के शरणापन्न हुए। आचार्य जी के उपदेश से श्रीमद्भागवत का व्रजभाषा में सूरसागर के नाम से उल्था किया। सूरसागर में सवालाख पद हैं, पर दुर्भाग्य वश सिवाय पाँच हज़ार पदों के अभी तक कोई पूर्ण प्रति नहीं मिली।

गोसाईं विठ्ठलनाथजी ने सूरदासजी को पुष्टिमार्गीय आठ सर्वोत्तम कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया था। पारासोली गाँव में, गुसाईं विठ्ठलनाथ जी के सामने, संवत् १६२० के लगभग सूरदासजी का शरीरान्त हुआ। आपका अन्तिम पद यह कहा जाता है—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट स्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़िजाते॥

सूरदासजी के अन्तकाल के प्रसंग पर भारतेन्दु जी ने लिखा है—

मन समुद्र भो सूर को, सीप भये चख लाल।
हरि मुक्ताहल परत ही, मूँदि भये ततकाल॥

सूरदास जी व्रज-साहित्य के जन्मदाता एवम् परिपोषक कहे जायँ तो कोई अत्युक्ति नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वे हिन्दी के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्ति पक्ष में तो उद्धव के अवतार माने जाते हैं। सूरसागर के पढ़ने से महाकाव्य के सभी गुण प्रत्यक्ष हो जाते हैं। वात्सल्य रस लिखने में तो आपने क़लम ही तोड़ दी है। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और चमत्कारपूर्ण है। हमारा तो यह कहना है कि जिन्हें साहित्य का कुछ रसास्वादन करना है उन्हें अवश्य ही सूरदासजी के मधुर भावपूर्ण पदों का पाठ करना चाहिये, सूरसागर के गान से लोक और परलोक दोनों ही आनन्ददायक हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कविसम्राट् सूर के सम्बन्ध में कई भावुक रसिक जनों ने अपनी अपनी अनुमतियाँ प्रकाशित की हैं। कतिपय प्रचलित सम्मतियाँ ये हैं—

"तत्व तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब जूठि॥

"उत्तम पद कवि गङ्ग के, कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर को, सूर तीन गुन धीर॥"

"किधौं सूर को सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यौ, तन मन धुनत सरीर॥"

"सूरदास बिन पद रचना अब कौन कविहिं कर आवै।"
"सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥"

सूरदास जी के निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चलता है—

१—सूर सारावली
२—सूरसागर (अपूर्ण)
३—साहित्य लहरी (दृष्टि कूटक पदावली) } प्राप्य

४—ब्याहलो
५—नल-दमयंती
६—हरिवंश टीका } अप्राप्य

सम्भव है ४—५—६ संख्यावली पुस्तकें किसी अन्य सूरदास की लिखी हों। सूर-सारावली और साहित्य-लहरी, सूर-सागर से निकाली गई हैं। सुतराम् सूरसागर ही इनका एक मात्र वृहद्ग्रन्थ है।

प्रस्तुत पुस्तक उसी सूरसागर के कतिपय उपादेय पदों का संग्रह है। इससे प्रथम सूरदास की विनय-पत्रिका नामक पुस्तक सम्मेलन से प्रकाशित हुई थी, जिसमें केवल विनय सम्बन्धी पद थे। किन्तु सूरपदावली में विनय और भक्ति सिद्धान्त के अतिरिक्त आनन्द कन्द भगवान कृष्णचन्द्र की बाललीला से लेकर प्रभास मिलन तक के चुने हुए पद आगये हैं। इससे प्राय सूरसागर के इतिवृत्त का आभास मात्र मिल जाता है। भक्तप्रवर सूरदासजी की समस्त कविताओं के सामने इस संग्रह को फूल की जगह पांखुरी भी नहीं कह सकते। हाँ, थोड़े ही से सुन्दर पदों से सहृदय पाठक अनुपम काव्य रस, अप्राकृत भक्त्यमृत और स्वर्गीय संगीत-सुधा पान करके कृतकृत्य हो सकते हैं, ऐसा विश्वास है।

विनीत—

संग्रहकर्ता।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

सूर-पदावली

विनय

(१)
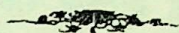
चरन कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई॥
बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई॥
सूर दास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥

---

(२)

करुनामय, तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै॥
जय अरु विजय कर्म कहा कीनो, ब्रह्म-सराप दिवायो॥
असुर जोनि ता ऊपर दीनीं धर्म-उछेद करायो॥
पिता बचन खंडै सो पापी, सो प्रह्लादहि कीनो॥
निकसे खंभ-बीच ते नरहरि ताहि अभय पद दीनो॥

दान-धर्म बहु कियो भानु-सुत सो तुव विमुख कहायो ।
वेद-विरुद्ध सकल पांडव-सुत सो तुम्हरे मन भायो ॥
जग्य करत बैरोचन को सुत, वेद विमल विधि कर्मा ।
सो छलि बाँधि पताल पठायो कौन कृपानिधि धर्मा ॥
द्विजकुल पतित अजामिल विषयी गनिका नेह लगायो ।
सुत-हित नाम लियो नारायन सो बैकुण्ठ पठायो ॥
पतिव्रता जालंधर-जुवती सो पतिव्रत ते टारी ।
दुष्ट पुंश्चली अधम सुगनिका सुवा पढ़ावत तारी ॥
मुकति हेतु जोगी श्रम कीनों असुर बिरोधहिँ पावै ।
अविगत गति करुनामय तेरी सूर कहा कहि गावै ॥

---

(३)

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं ।
हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतितै ह्वै निस्तरिहौं ।
अबहौं उघरि नचन चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं ॥
कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
सूर पतित तबहीं लै उठि है, जब हँसि देहौ बीरा ॥

---

(४)

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन को सङ्ग ।
जिन के संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भङ्ग ॥

कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गङ्ग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन मर्कट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छंग॥
पाहन पतित बाँस नहिं बेधत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारि कामरी चढ़त न दूजो रंग॥

---

(५)

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भरम भर्यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
तृस्ना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दे ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल॥
कोटिक कला काछि देखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नंदलाल॥

---

(६)

मेरो मन अनत ! कहाँ सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पै आवै॥

! अनत = अन्यत्र

कमलनैन को छाँड़ि महातम,† और देव को धावै।
परम गङ्ग कौं छाँड़ि पियासो, कुमति कूप खनावै।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै॥
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी* कौन दुहावै॥

---

(७)

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैनन की छबि जहै चतुरता ज्यों मकरन्द मुकुन्दहि ध्यावै॥
निर्मल चित्त तौ सोई साँचौ कृष्ण बिना जिय और न भावै।
स्रवननि कीजु यहै अधिकाई सुनि रस कथा सुधा रस प्यावै॥
कर तेई जे स्यामहिं सेवैं चरननि चलि वृन्दावन जावैं।
सूरदास जैयें बलि ताके जो जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावैं॥

---

(८)

जाको मन लाग्यो नँदलालहिं ताहि और नहिं भावै हो।
ज्यों गूंगो गुर खाइ अधिक रस सुख सवाद न बतावै हो॥
जैसे सरिता मिलै सिंधु कौ वहुरि प्रवाह न आवै हो।
ऐसे सूर कमललोचन ते चित नहिं अनत डुलावै हो॥

---

† महातम = महातमो गुण शान्ती।
* छेरी = बकरी

(९)

जनम सिरानो ऐसेहि ऐसे।
कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै वैसे॥
कै कहुँ खान-पान रसनादिक, कै कहुँ बाद अनैसे।
कै कहुँ रंक कहूँ ईस्वरता, नट बाजीगर जैसे॥
चेत्यौ नहीं, गयौ टरि अवसर, मीन बिना जल जैसे।
यह गति भई सूर की ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसे॥

---

(१०)

अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यो।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूमि भर्‌यो॥
हरि-सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि भर्‌यो।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो तसकर अरि पकर्‌यो॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप पर्‌यो॥
ऐसे गज लखि फटिक सिला में दसननि जाइ अर्‌यो॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्‌यो।
सूरदास नलिनी की सुवटा कहि कौने जकर्‌यो॥

(११)

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुनु अर्जुन परतिग्या मेरी, यह ब्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरि कै, पाइँ पयादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो।
देखि बिचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भक्त अपने की, हारे हारि बिचारों।
सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन जारों॥

---

(१२)

गोविन्द कोपि चक्र कर लीन्हों।
छाँड़ि आपनो प्रन जादवपति, जन को भायौ कीन्हों॥
रथ ते उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाये।
मनु संकित भूभार उतारन, चलत भये अकुलायें॥
कछुक अङ्ग ते-उड़त पीत पट, उन्नत बाहु बिसाल।
स्वेद-स्रोत तनु सोभा कन छबि, घन बरसत जनु लाल॥
सूर सुभुजा समेत सुदर्सन, देखि बिरंचि भ्रम्यौ।
मानो जान सृष्टि करिबे कों, पदमज नाम भज्यौ॥

---

(१३)

बाल—लीला

भाई आजु ते बधाई बाजै नन्द महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठौहर-ठौहर के॥
फूली धेनु फूले धाम फूलीं गोपी अंग अंग,
फूले फूले तरुवर आनँद लहर के॥
फूले बंदी-जन द्वारे फूली फूले बंदनवारे,
फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के॥
फूले फिरैं जादव कुल अनँद समूल मूल,
अंकुरित पुन्य फूले पिछले पहर के॥
उमगे जमुन-जल प्रफुलित कुंज कुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के॥
नृत्यत मदन फूले फूली रति अंगअंग,
मन के मनोज*फूले हलधर हरि के॥
फूले द्विज संत बेद मिटि गयो कंस-खेद,
गावत बधाई सूर भीतर बहर के॥

---

(१४)

कर गहि पग अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े* पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रँग खेलत॥

* कामनाएँ, इच्छा।
* पड़े हुए हैं।

सिव सोचत बिधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यो सागर जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिगदंतौ न सकेलत॥
मुनि मन भीत भये भव कंपित सेष सकुचि सहसौ फन पेलत॥
उन व्रजवासिन बात न जानी, समुझे सूर सकट पगु पेलत॥

---

(१५)

लालन हौं, वारी तेरे मुख पर।
माई मोरिही डीठि न लागै ताते मसि-बिन्दी दयो भ्रू पर
सर्वसु मैं पहिले ही दीनों नान्हीं नान्हीं तँतुली दू पर।
अब कहा करौं निछावरि सूर जसोमति अपने लालन ऊपर॥

---

(१६)

लाला हौं, वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक मोहन मन विहँसत, भृकुटि विकट पंकज नैननि पर॥
द्वै द्वै दमकि दँतुलियाँ विहँसत, मनु सीपिज घरु किय वारिज पर।
लघु लघु सिर लट घूँघरवारी, रहीं लटकी लौनी लिलार पर।
यह उपमा कहि कापै आवै, कछुक कहौं सकुचत हौं हिय पर॥
नूतन चन्द्ररेख मधि राजति, सुरगुरु सुक्र उदोत परसपर।

/. तिलरि, बिडरि * दृष्टि.
x इकट्ठा करते हैं ※ बच्चों का अव्यक्त शब्द.
÷ भीत घुसा लेटते। † लावण्यवती
※ शकटासुर मार दिया

लोचन लोल कपोल ललित अति, नासिक को मुक्तारद*छद पर ।
सूर कहा न्यौछावरि करिये, अपने लाल ललित लर ऊपर ॥

---

(१७)

जसोदा मदन गुपाल सुवावै ।
देखि सुपन-गति त्रिभुवन काँप्यौ ईस विरंचि भ्रमावै ॥
असित अरुन सित आलस लोचन, उभै पलक पर आवै ।
जनु रविगति संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़न न पावै ॥
चौंकि चौंकि सिसु दसा प्रगट करि छवि मन में नहिं आवै ।
मानों निसिपति धरि कर अमरत स्रुति भंडार भरावै ॥
स्वास उदर उरसति यों, मानों दुग्ध सिंध छवि पावै ।
नाभि-सरोज प्रगट पदमासन, उतरि नाल पछितावै ॥
कर सिर तरु करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सों भावै ।
सूरदास मानौं पन्नगपति प्रभु ऊपर फन छावै ॥

---

(१८)

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई ।
खेलत कुँअर कनक आँगन में, नैन निरखि छवि छाई ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरंग बनाई ।

* रद छद = उपरोष्ठ ।

मानों नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराई ।
मानों प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिरि आई ॥
नील स्वेत पर पीत लालमनि, लटकनि भाल लुनाई ।
सनि-गुरु-असुर देव-गुरु मिलि मनु भाम सहित समुदाई ॥
दूधदंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत इक उपमाई ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु घन में बिद्यु छिपाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अलप जलप जलपाई ।
घुटुअन चलत रेनु तनु मंडित, सूरदास बलि जाई ॥

---

(१९)

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल कों आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे नहिं वेगि सों आवै तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ॥
सोवत जानि मौन ह्वै बैठी करि कर-सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसमति मधुरै गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँदभामिनि पावै ॥

---

(२०)

जसुमति मन अभिलाष करै ॥

कब मेरो लाल घुटुअन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै ॥
कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरैं मुख बैन झरै ।
कब नन्दहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहिं ररै ॥
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै ।
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने करसों मुखहिं भरै ॥
कब हँसि बात कहैंगे मोसों छवि पेखत दुख दूरि करै ।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गई कछु काज घरै ॥
एहि अन्तर अँधवारि उठी इक गरजत गगन सहित घहरै ।
सूरदास व्रज लोग सुनत धुनि जो जहँ तहँ सत अतिहि डरै ॥

---

(२१)

गहे अँगुरिया तात की नँद चलन सिखावत ।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि स्याम सों कछु बोल बकावत ।
दुहुँधा दोउ दँतुली भईं अति मुख छबि पावत ॥
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नँद पग द्वैकरि धावत ।
कबहुँ धरनि पर बैठि मन महँ कछु गावत ॥

कबहुँ उलटि चल धाम को घुटुअन करि धावत।
सूरस्याम मुख देखि महर मन हरष बढ़ावत॥

---

(२२)

चन्द्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चन्द्र खिलौना लैहौं।
धौरी कौ पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं॥
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झंगुली कंठ न लैहौं।
जैहौं लोटि अबइ धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं॥
लाल कहैहौं नन्द बवा कौ, तेरो सुत न कहैहौं।
कान लाय कछु कहति जसोदा ताउहिं नाहिं सुनैहौं॥
चन्दा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं॥
तेरी सौं मेरी सुन मैया, अबहीं ब्याहन जैहौं।
सूरदास सब सखा बराती नूतन मङ्गल गैहौं॥

---

(२३)

लेहौं री मा, चन्दा चहौंगो।
कहा करौं जलपुट भीतर को वाहर ओकि गहौंगो॥
यह तौ झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो।
वह तो निपट निकट ही देखत बरज्या हौं न रहौंगो॥

तुमरो प्रेम प्रगट मैं जान्यौ बौराए न बहौंगो।
सूरस्याम कहै कर गहि ल्याऊँ ससि तनु-ताप दहौंगो॥

---

(२४)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुवन मोहिं पठायौ।
चार पहर बंसीवट भटक्यौ साँझ परे घर आयौ॥
मैं बालक बहिंयन को छोटौ छींका किहि विधि पायौ।
ग्वालबाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायौ॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायौ।
जिय तेरे कछु भेद उपजि है जानि परायौ जायौ॥
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायौ।
सूरदास तब बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायौ॥

---

(२५)

जागिये ब्रजराज कुंअर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृन्द सकुचत भये भृङ्गलता भूले॥
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खिरकन में बछरा हित धाई॥

विधु मलीन रबि-प्रकास, गावत नरनारी।
सूरस्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर-धारी॥

---

(२६)

प्रात समय उठि सोवत हरि को, बदन उघार्‌यौ नन्द।
रहि न सकत देखन कौ आतुर, नैन निसा के द्वंद॥
स्वच्छ सेज में ते मुख निकसत, गयौ तिमिर मिटि मन्द।
मानों मथि सुर सिंह फेन फटि, दरस दिखायौ चंद॥
धायौ चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि सखा सुछंद।
रही न सुधिहु सरीर धीर मति, पिवत किरन मकरन्द॥

---

(२७)

मैया, कब बढ़िहै मेरी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत पोंछत नागिनि सी भ्वै लोटी॥
काचो दूध पिवावति पचि पचि देति न माखन रोटी।
सूर स्याम चिरजीवौ दोउ भैया हरि-हलधर की जोटी॥

---

(२८)

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनों, तू जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हरो तातु॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत वलवीर॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुखरिस समेत लखि, जसुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह वलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूरस्याम मो गोधन की सौं 'हौं माता तू पूत'॥

---

(२९)

मैया, मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइँ पिराइ॥
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालन कौं, गारीदेति रिसाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन वहराइ।
सूरस्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिँगाइ॥

---

(३०)

दै मैया भँवरा चकडोरी।
जाइ लेहु आरे पर राखौ कालिह मोल ले राखै कोरी॥
ले आये हँसि स्याम तुरत ही देखि रहे रँग रँग बहुडोरी।
मैया बिना और को राखै बार बार हरि करत निहोरी॥
बोलि लिए सब सखा संग के खेलत स्याम नन्द की पौरी।
तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक कर भंवरा-चकरिनि की जोरी॥
देखति जननि जसोदा यह छबि बिहँसति बारबार मुखमोरी।
सूरदास प्रभु हँसिहँसि खेलत ब्रज बनिता तृन डारति तोरी॥

---

(३१)

जसुमति दौरि लये हरि कनियाँ।
आजु गयो मेरो गाइ चरावन हौं बलि गई निछनियाँ।
मो कारन कछु आन्यौ है बलि बनफल तोरि कन्हैया॥
तुमहिं मिले मैं अति सुख पायौ मेरो कुंअर कन्हैया॥
कछुक खाहु जो भावै मोहन, देतिहुँ माखन रोटी।
सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि-हलधर की जोटी॥

---

(३२)

आज मैं गाइ चरावन जैहों।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपनेकरते खैहौं॥
ऐसी अवहिं कहौ जनि वारे, देखौ अपनी भाँति।
तनिक तनिक पाँइ चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति॥
प्रात जात गैयाँ लै चारन घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरो कमल बदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहिं माँझ॥
तेरी सौं मोहिं घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत परे आपनी टेक॥

---

(३३)

को माता को पिता हमारे?
कब जनमत हमको तुम देख्यौ,हँसी लगति सुनि बाततुम्हारी॥
कब माखन चोरी करि खायो, कब बाँधे महतारी।
दुहत कौन की गैया चारत बात कही यह भारी॥
तुम जानति मोहिं नन्द-ढुटौना, नन्द कहाँ ते आये?
मैं पूरन अविगति अविनासी माया सबनि भुलाये॥
यह सुनि ग्वालिन सबै मुसिकानी, ऐसेउ गुन हौ जानत?
सूरस्याम जो निदर्यौ सब ही मात-पिता नहिं मानत॥

२

(३४)

श्रीराधाकृष्ण–अनुराग

आँखिन में बसै, जियरे में बसै, हियरे में बसत निसि दिन प्यारो।
मन में बसै तन में बसै, रसना में बसै अङ्ग-अङ्ग में बसत नंदवारो॥
सुधि में बसै, बुधिहू में बसै, उरजन में बसत पिय प्रेम दुलारो।
सूरस्याम बनहू में बसत रंग ज्यों जल रङ्ग न होत नियारो॥

———

(३५)

करन दै लोगन कों उपहास।
मनक्रम बचन नन्दनन्दन को, नेकु न छाड़ौं पास॥
सब या व्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाये घाँस।
अब तौ इहै बसी री माई, नहिं मानूंगी त्रास॥
कैसे रह्यो परैरी सजनी, एक गाँव को बास।
स्याम–मिलन की प्रीति सखीरी, जानत सूरजदास॥

———

(३६)

व्रजहिं बसे आपहिं बिसरायो।
प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु, बातनि भेद करायो।
जल थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं भेद उपनिषद गायो॥

द्वै तनु जीव एक हम तुम दोउ, सुख कारन उपजायो।
सूरस्याम मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुञ्ज बढ़ायो॥

---

(३७)

नवल गुपाल नवेली राधा नये प्रेम-रस पागे।
नव तरु बनविहार दोउ क्रीड़त, आपु आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत सुख के बागे।
मानहुं बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि पजारन लागे।
कबहुँक बैठि अंसु भुज धरि कैं, पीक कपोलनि दागे।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालच लगे सभागे॥
मनहुँ सूर कलपद्रुम की निधि, लै उतरी फल आगे।
नहिं छूटत रति रुचिर भामिनी, ता सुख में दोउ पागे॥

---

(३८)

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त हैं, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग॥
रुचिर कपोत बसैं ता ऊपर ता ऊपर अमिरत फल लाग।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृग मद काग।
खञ्जन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अङ्ग अङ्ग अति और और छवि, उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस, मानों अधरनि के बड़भाग॥

———

(३९)

बाँसुरी विधिहू ते प्रवीन।
कहिये काहि आहि कर ऐसो कियो जगत आधीन॥
चारि वदन उपदेश विधाता थापी थिर-चर-नीति।
आठ बदन गरजति गरबीली क्यों चलिए यह रीति॥
बिपुल बिभूति लई चतुरानन एक कमल करि थान।
हरि-कर-कमल जुगल पर बैठी बाढ्यौ इह अभिमान॥
एक बेर श्रीपति के सिखये उन लियो सब गुन गान।
इनके तौ नंदलाल लाडिलौ, लग्यो रहत नित कान॥
एक मराल पीठि आरोहन, विधि भयो प्रबल प्रसंस।
इन तौ सकल बिमान किए, गोपीजन-मानस-हँस॥
श्री बैकुण्ठनाथ-उर वासिनि चाहत जा पद रैन॥
ताकौ मुख सुखमय सिंहासन करि बैठी यह ऐन॥
अधर सुधा पी कुलव्रत टार्यो, नहीं सिखा नहिं ताग।
तदपि सूर जा नन्द सुवन कौ जाही सों अनुराग॥

(४०)

नैना भये घर के चोर।

लेत नहिं कछु बनै इनसौं, देख छबि भये भोर॥
नहीं त्यागत नहीं भागत, रूप जाग प्रकास।
अलक डोरनि बाँधि राखे, तजौ इनकी आस॥
मैं बहुत करि बरजि हारी, निदरि निकसे हेरि।
सूर स्याम बँधाइ राखे, अंग के छबि घेरि॥

---

(४१)

नटवर भेष धरे व्रज आवत।

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल कुटिल अलक मुख पर छवि पावत॥
भृकुटी विकट नैन अति चंचल यह छवि पर उपमा इक धावत॥
धनुष देखि खंजन विधि डर पत उड़ि न सकत उठिये अकुलावत॥
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत गौरी राग अलाप बजावत॥
सुरभी-वृन्द गोप बालक संग गावत अति आनन्द बढ़ावत॥
कनक-मेखला कटि पीतांबर नृत्यत मन्द मन्द सुर गावत॥
सूरस्याम प्रतिअंग माधुरी निरखत व्रज-जन के मन भावत॥

---

(४२)

राास-रस-रीति नहिं बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन,
लहौं कहाँ इहि चित्त जिय भ्रम भुलावै॥
जो कहौं कौन मानै नियम अगम जो,
कृपा बिन नहीं जा रसहिं पावै।
भाव सौं भजै बिना भाव में जे नहीं,
भाव ही माहि भाव जह बसावै॥
जहै निज मंत्र जह ग्यान जह ध्यान है,
दरस दंपति भजन-सार गाऊँ।
जहै माँगौ बार बार प्रभु सूर के नैन दोउ,
रहैं, अरु नित्य नर-देह पाऊँ॥

——

(४३)

अद्भुत कौसल देखि सखी री, श्रीवृन्दावन होड़ परी री॥
उत घन उदित सहित सौदामिनि, इत मुदित राधिका हरीरी॥
उत बन पांति शोभित इत सुन्दर धाम बिलास सुदेस खरीरी।
उत घन गरज इहाँ मुरली धुनि, जलधर उत इत अमृत भरीरी॥
उतहि इन्द्रधनु इत बनमाला, अति विचित्र हरिकण्ठ धरी री।
सूर साथ प्रभु कुँअरि राधिका, गगन की सोभा दूरि करी री॥

मथुरा-प्रवास

(४४)

कह्यौ कान्ह सुनु जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चारि-पाँच में, हम हलधर दोउ भैया॥
मुरली बेंत विषान देखियो, स्रंगी बेर सवेरौ।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेरो॥
जा दिन तें तुम सों बिछुरे हम; कोउ न कहत 'कन्हैया'।
भोरहिं नाहिं कलेऊ कीनों, साँझ न पियो अचैया॥
कहत न बन्यौ सँदेसो मोपै, जननि जितो दुख पायो।
अब हम सों वसुदेव-देवकी कहत आपनो जायो॥
कहिये कहा नंद बाबा सों बहुत निठुर मन कीनों।
सूर हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी, बहुरो सोध न लीनों॥

---

(४५)

उठे कहि माधौ इतनी बात।
जिती मान सेवा तुम कीन्हीं बदलौ दयो न जात॥
पुत्र-हेतु प्रतिपाल कियो तुम जैसे जननी-तात।
गोकुल बसत खवावत खेलत दिवस दिवस न जान्यौ जात॥
होहु बिदा घर जाहु गुसाईं माने रहियौ नात।
ठाढ़ो थक्यौ उतर नहिं आवै, लोचन जल न समात॥

भये बलहीन खीन तनु कंपित ज्यों बयारि बस पात।
धकधकात मन बहुत सूर उठि चले नंद पछितात॥

---

(४६)

फिरि करि नंद न उत्तर दीन्हों।
रोम रोम भरि गयो बचन सुनि मनहुँ चित्र लिखि कीन्हों॥
यह तो परम्परा चलि आई सुख दुख लाभ अरु हानि।
हम पर बवा दया करि रहियो सुत अपनो जिय जानि॥
को जलपै काके पल लागै निरखि बदन सिर नायो।
दुख-समूह हिरदै परिपूरन चलत कंठ भरि आयो॥
अध अध पद भुव भई कोटि गिरि जौ लगि गोकुल पैठो।
सूरदास अस कठिन कुलिस ते अजहुँ रहत तनु बैठो॥

श्रीकृष्ण-विरह

(४७)

जसोदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तिहारी चारौ कैसे मारग सूझै॥
इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीनों फूँक।
यह छतिया मेरे कुंवर कान्ह बिनु फटि न गई द्वै टूक॥

धिग तुम धिग वे चरन अहो पति, अधबोलत उठि धाये।
सूर स्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आये॥

---

(४८)

तब तू मारिबोई करति।
रिसनि आगे कहि जो आवत अब लै भाँड़े भरति॥
रोस कै कर दावरी लै फिरति घर घर धरति।
कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा कत मरति॥
नृपति कंस बुलाइ पठयो बहुत कै जिय डरति।
इह कछू विपरीत मो मन माँझ देखी परति॥
होनहारी होइहै सोइ अब यहीं कत अरति।
सूर तब किन फेरि राखे, पाइँ अब केरि परति॥

---

(४९)

बिछुरे श्री ब्रजराज आज इन नैनन ते परतीति गई।
उठि न गई हरि संग तबहि तें ह्वै न गई सखि स्याममई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनों कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल जे लोचन, व्यथा में छवि छीनि लई॥
अब काहे जल मोचत, सोचत, समौ गये तें सूल नई।
सूरदास जाही तें जड़ भए, इन पलकन ही दगा दई॥

(५०)

अरी, मोहि भवन भयानक लागै माई स्याम बिना।
देखहिं जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अँगना॥
लै जु गए अक्रूर ताहि कौ ब्रज के प्रान-धना।
कौन सहाय करै घर अपने मैटै विघन घना॥
काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना।
सूरदास मोहन-दरसन बिनु सुख-संपति सपना॥

---

(५१)

मेरे कुंवर कान्ह बिन सब कुछ वैसेहिं धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥
सूने भवन जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनँद हो तो सो मुनि-मनसहु न गहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ीहू न लहै॥

---

(५२)

नैन सलौने स्याम हरी कब आवहिंगे॥
वै जो देखत राते राते, फूलन फूले डार।
हरि बिन फूलझरी सी लागति, झरि झरि परत अँगार॥

बीनन फूल न जाउ सखी री, हरि बिन कैसे फूल।
सुन री सखी, मोहिं लागत हरि बिनु, फूले फूल त्रिसूल॥
जब ते पनिघट जाउँ सखीरी, वा जमुना के तीर॥
भरि भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि के नीर॥
इन नैननि के नीर सखी री, सेज भई घर नाउ।
चाहत हों ताही पै चढ़ि कै हरिजू कै ढिंग जांउ॥
लाल पियारे, प्रान हमारे रहे अधर पै आय।
सूरदास प्रभु कुञ्जविहारी मिलन क्यों नहीं धाय॥

---

(५३)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतङ्ग करी दीपक सौं, आपै प्रान दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सौं संपति हाथ गह्यो।
सारँग प्रीतिकरी जो नाद सौं, सनमुख बान सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधौ सौं, चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनौं नैननि नीर बह्यो॥

---

(५४)

प्रीति तो मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतङ्ग ज्योति पावक सौं जरत न आयु सँभारै॥
प्रीति कुरङ्ग नाद स्वर-मोहित, वधिक निकट ह्वै मारै।

प्रीति परेवा उड़त गगन तें, गिरत न आपु सँभारै ॥
सावन मास पपीहा बोलत पिय पिय करि जो पुकारै।
सूरदास प्रभु दरसन कारन ऐसी भाँति बिचारै ॥

---

(५५)

सखी री, स्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार।
भँवर कुरङ्ग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार ॥
कमलनयन मधुपुरी सिधारे मिटि गयो मङ्गलचार।
सुनहु सखी री, दोष न काहू जो विधि लिख्यौ लिलार।
यह करतूति इन्हें की ताईं पूरब बिबिध बिचार ॥
उमँगि घटा नवि आवै पावस प्रेम की प्रीति अपार।
सूरदास सरिता सर पोषत चातक करत पुकार।

---

(५६)

सखी री, स्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करै कैसेहू वे अपना गुन ठानै ॥
देखो जा जलधर की करनी बरषत पौषै आनै ?
सूरदास सरवस जो दीजै कारो कृपहिं न मानै ॥

यशोदा-सन्देश

(५७)

पंथी, इतनी कहियो बात।
तुम बिनु इहाँ कुँवरवर मेरे होत जिते उतपात॥
बकी अघासुर टरत न टारे बालक बनहिं न जात।
ब्रज-पिंजरा रुँधि मनु राखे निकसन को अकुलात॥
गोपी गाय सकल लघु दीरघ पीत बरन कृस गात।
परम अनाथ देखियत तुम बिनु केहि अवलंबिय प्रान॥
कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौं अब कैसे जिय मानत।
जह व्यवहार आज लौं है ब्रज कपट-नाट्य छल ठानत॥
दसहू दिसि ते उदित होत हैं दावानल के कोट।
आँखिन मूँदि रहत सनमुख ह्वै नाम-कवच दै ओट॥
जे सब दुष्ट हते अरि जेते भये एक ही पेठ।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब समुझि पुरातन हेठ॥

---

(५८)

सँदेसौ देवकी सौं कहियो।
हौं तौ धाइ तुम्हारे सुत की माया करति नित रहियो॥
जदपि टेव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहिं माखन-रोटी भावै॥

तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते ।
जोइ़जोइ़ मांगत सोइ़सोइ़ देतीक्रमक्रमकरिकरिन्हाते ॥
सूर पथिक,सुनि मोहिं रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच ।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच ॥

---

(५९)

हौं इहाँ गोकुल ही तें आई।
देवकी माई पाँइ लगति हौं, जसुमति इहाँ पठाई ॥
तुम सों महरि जुहार कह्यो है कहहु तौ तुमहिं सुनाऊँ ।
वारेक बहुरि तुम्हारे सुत कौ कैसहुँ दरसन पाऊँ ॥
तुम जननी जग-विदित सूर प्रभु हौं हरि की हितधाई ॥
जौ पठवहु तौ पाहुन नाते आवहिं बदन दिखाई ॥

उद्धव-आगमन

(६०)

पहिले प्रनाम नँदराइसों ।
ता पीछे मेरौ पालागन कहियो जसुमति माइ सों ॥
एक बार तुम बरसाने लौं जाइ सबै सुधि लीजौ ।
कहि वृषभानु महरि सौं मेरौ समाचार सब दीजौ ॥

श्री दामा आदि सकल ग्वालन कौ मेरे हित हिय भेटियो।
सुख संदेस सुनाइ-सबनिकौ दिन दिनको दुख मेटियो ॥
मित्र; एक मन बसत हमारे ताहि मिले सुख पाइहो।
करि करि समाधान नीको विधि मोहिं को माथौ नाइहौ ॥
डरियहु जनि तुम सघन कुञ्ज में हैं तहँ के तरु भारी।
वृन्दावन मति रहति निरन्तर कबहुँ न होति नियारी॥
ऊधौ सौं समुझाइ प्रगट करि अपने मन की बीती।
सूरदास स्वामी सौं छल सौ कही सकल व्रज प्रीती॥

———

(६१)

ऊधौ, तुम व्रज की दसा विचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा विस्तारो॥
जा कारन तुम पठये माधौ सो सोचौ जिय माहीं।
कितनौं बीच विरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं?
तुम परबीन चतुर कहियत हौ, संतन निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिरि कहा गहत हौ॥
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तैं टारौं।
जोग जुगति अरु मुकति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं॥
जिहि उर कमलनयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन क्यों आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै॥

———

(६२)

ऊधौ, ना हम बिरहिन, ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजु भजहु अकास॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरे छाँड़ि जीवन की आस।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास॥
पंकज परम पंक में बिहरत, बिधि कियौ नीर निरास।
राजिव रबि को दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास॥
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रियतम कौ बनवास।
सूरस्याम सौं प्रतिव्रत कीन्हौं, छाँड़ि जगत-उपहास॥

---

(६३)

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाँति बूंद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरङ्ग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत॥
निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतङ्ग देखि बपु जारत, भये न प्रेम घट[1] रीते॥
कहि अलि, क्यों बिसरति वे बातैं संग जो करि व्रजराजै।
कैसे सूरस्याम हम छाँडैं, एक देह के काजै॥

---

१. तनिक.

(६४)

हमको हरि की कथा सुनाउ।
ए आपनी ग्यान-गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ॥
नगर-नारि नीके समुझैंगी तेरो बचन बनाउ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ॥
जो सुचि सखा स्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ।
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि देखाउ॥
जो कोउ कोटि करै कैसेहू विधि विद्या ब्यौसाउ।
तो सुन 'सूर' मीन के जल विनु नाहिन और उपाउ॥

---

(६५)

और सकल अंगन ते ऊधो अँखियाँ बहुत दुखारी।
अधिक पिराति सिराति न कबहूँ अमित जतन करि हारी॥
चितवति मग सुनि मेष न मिलवति बिरह बिकल भईं भारी।
भरि गई बिरह-बाइ माधो तन इकटक रहत उघारी॥
अलि आली गुरु ग्यान सलाका क्यों सहि सकति तुम्हारी।
'सूर' सुअंजन आंजि रूप-रस आरति हरौ हमारी॥

---

(६६)

ऊधो, हम आजु भईं बड़ भागी।
जिन अँखियन तुम स्याम बिलोके ते अँखियाँ हम लागी॥
जैसे सुमन-बास लै आवत पवन मधुप! अनुरागी।
अति आनन्द होत है तैसे अंग अंग सुखरागी॥
ज्यों दरपन में दरसन देखत दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसे 'सूर' मिले हरि हमको बिरह-व्यथा तनु त्यागी॥

---

(६७)

ऊधो, जोग जोग हम नाहीं।
अबला सार ग्यान कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं॥
ते ए मूँदन नैन कहत हैं, हरि-मूरति जा माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हम ते सुनी न जाहीं॥
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ए दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भसम बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं॥
जोगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माहीं।
'सूर स्याम' ते न्यारे न पल छिन, ज्यों घट[1] तै परछाहीं॥

---

१. शरीर

(६८)

मधुकर, इतनी कहियहु जाइ।

अति कृस गात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ॥
जल-समूह बरषति दोउ आंखैं हूंकति[1] लीने नाउँ।
जहाँ-तहाँ गोदोहन कीनों सूंघति सोई ठाउं॥
परति[2] पछार खाइ छिनहीं छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ 'सूर' काढ़ि डारी हैं वारि-मध्य ते मीन॥

---

(६९)

ऊधो, अँखियाँ अति अनुरागी।

इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी॥
बिन पावस पावस रितु आई देखत हैं विदमान।
अब धौं[3] कहा कियो चाहत है छाँड़हु निरगुन ग्यान॥
सुनि प्रिय सखा स्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ।
जैसे मिलैं 'सूर' के स्वामी तैसो करहु उपाइ॥

---

१. हुंकार भरती है।
२. पछाड़ खाकर गिर पड़ती है
३. इतने पर भी

उद्धव-प्रत्यागमन

(७०)

प्रेम प्रेम तें होय प्रेम तें पारहि जइयै।
प्रेम बँधो संसार, प्रेम परमारथ लहिये॥
एकै निहचै प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निहचै प्रेम को, जिहि रे मिलैं गोपाल॥
ऊधो, कहि सत भाय, न्याय तुम्हरे मुख साँचे।
जोग प्रेम रस कथा, कहौ कंचन कै काँचे॥
जाके पर है हूजिये गहिये सोई नेम।
मधुप हमारी सौं कहौ, जोग भलो कै प्रेम॥
सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले॥
खिन गोपी के पां परैं, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटई, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते, मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो जदुपति पै चले, धरे गोप कौ भेस॥
भूले जदुपति नांउ, कह्यो गोपाल गोसाईं।
एक बार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई॥

वृन्दावन सुख छाँड़िकै, कहाँ बसे हो आइ।
गोवर्द्धन-प्रभु जानि कै ऊधो पकरे पाँइ॥
ऊधो ब्रज को नेम-प्रेम बरनौ सब आई।
उमँग्यो नैनन नीर, बात कुछ कही न जाई॥
सूर स्याम भूलत भये, रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पीतपट सों कह्यौ, भले आए जोग सिखाइ॥

---

(७१)

सुन ऊधो, मोहि नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।
तुम उनको कछु भलो न कीनों निसिदिन दियो वियोग॥
जदपि बसुदेव देवकी मथुरा सकल राज-सुख-भोग।
तद्यपि मनहि बसत बंसीबट ब्रज जमुना संयोग॥
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो जोग।
'सूर' उसास छाँड़ि भरि लोचन बढ्यो बिरह ज्वर सोग॥

---

(७२)

सुनिये ब्रज की दसा गोसाईं।
रथ की धुजा पीतपट भूषन देखत ही उठि धाईं॥
जो तुम कही जोग की बातैं ते मैं सबै सुनाईं।
स्रवन मूंदि गुन करम तुम्हारे प्रेम मगन मन गाईं॥

औरो कछु संदेस सखी इक कहति दूरि लौ आईं।
हुतो कछू हमहू सों नातो निपट[१] कहा बिसराईं ॥
'सूरदास' प्रभु बन विनोद करि जो तुम गऊ चराईं।
ते गऊ दीन हीन अति दीखैं मानों भईं पराईं ॥

---

(७३)

व्रज के बिरही लोग दुखारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुरबल तनु कारे ॥
नन्द जसोदा मारग जोवत नित उठि साँझ सकारे[२]।
चहुँदिसि 'कान्ह कान्ह' करि टेरत अंसुवन वहत पनारे ॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब अति ही दीन बिचारे।
'सूरदास' प्रभु विन यों सोभित चन्द्र विना ज्यों तारे ॥

---

(७४)

कहाँ लौं कहिए व्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम विनु उन लोगन जैसे दिवस बिहात ॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वे मलिन वदन[३] कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हेमहत अंबुज गन बिन पात ॥
जो कहुँ आवत देखि दूर ते सब पूँछत कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात ॥

१. बिलकुल २. सकारे = सकाले = प्रातःकाल
३. मलीमस-मुख.

पिक[1] चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात ।
सूर स्याम संदेसन के डर पथिक न उहि मग जात ॥

---

(७५)

ऊधो, मोहिं व्रज बिसरत नाहीं ।
बृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं ॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नन्द देखि सुख पावत ।
माखन-रोटी दह्यो[2] सजायो, अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत, सब दिन हँसत सिरात[3] ।
'सूरदास' धनि धनि व्रजवासी, जिन सों हँसत व्रजनाथ ॥

विरह-प्रलाप

(७६)

नैना भये अनाथ हमारे ।
मदन गोपाल यहाँ ते सजनी, सुनियत दूर सिधारे ॥
वे हरि जल हम मीन बापुरी,[4] कैसे जियहिं निनारे* । * अलग
हम चातक चकोर स्यामल घन, बदन सुधानिधि+ प्यारे ॥ + चन्द्रमा
मधुबन# बसत आस दरसन की, नैन जोइ मग हारे । # मधुपुरी (मथुरा)
'सूरजस्याम' करी पिय ऐसी, मृतकहु ते पुनि मारे ॥

१· कोकिल. २· दह्यो = दधि = दही, ३· [illegible] होते थे । ४· बिचारे

(७७)

जिन कोउ काहू के बस होहि।
ज्यौं चकई दिनकर बस डोलति मोहि फिरावत जोहि ॥
हम तौ रीझि लट्टू भई लालन ! महा प्रेम जिय जानि।
बंध अबंध अमति निसिबासर को सुरझावति आनि ॥
उरझे संग अङ्ग अङ्गन प्रति बिरह बेलि की नाई।
मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तजि रूप-सुधा सियराई ॥
अति आधीन हीन मति व्याकुल कहाँ लौं कहौं बनाई।
ऐसी प्रीति करी रचना पर 'सूरदास' बलि जाई ॥

---

(७८)

अँखियाँ हरि दरसन की भूखी।
अब किमि रहति स्याम रँगराती, ए बातें सुनि रूखी ॥
अवधि गनति इकटक मग जोवति तब एत्यौं नहिं भूखी।
इते मान इहि जोग सँदेसन, सुनि अकुलानी दूखी ॥
'सूर' सो कत हठ नाव चलावत, ए सरिता है सूखी।
बारक वह मुख आनि देखावहु, दुहि पय पिवत पतूखी ॥

सुदामा-चरित

(७९)

हरि कौ मिलन सुदामा आयो।
विधि करि अरघ पाँवड़े दीनें अंतर प्रेम बढ़ायो॥
आदर बहुत कियो जादवपति मर्दन करि अन्हवायो।
चोवा[१] चंदन अगर कुमकुमा परिमल अङ्ग चढ़ायो॥
पूरब जनम अदात जानि कै ताते कछू मँगायो।
मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को वनिता विनय पठायो॥
सम[२] दै विप्र सुदामा घर को सर्बसु दै पहुँचायो।
'सूरदास' बलि बलि मोहन की तिहूँ लोक पद पायो॥

---

(८०)

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनु सुन्दरि, हरि मिलन न जिय बिसरै॥
और मित्र ऐसे समये महँ कत पहिचान करै।
बिपति परे कुसलात न बूझै बात नहीं बिचरै॥
उठि कै मिले, तँदुल हरि लीने मोहन बचन फुरै[३]।
'सूरदास' स्वामी की महिमा बिधि टारी न टरै॥

१. चोवा = चन्दन + केशर + उशीर [खसखस]
२. सान्त्वना. ३. स्फुरित हुए.

(८१)

और को जानै रस की रीति।
कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवन पति मिले पुरातन प्रीति॥
चतुरानन तन[1] निमिष न चितवत इती राज की नीति।
मोसों बात कही हिरदय की गए जाहि जुग बीति॥
बिनु गोबिन्द सुख सुन्दरि कैसे भुस पर की सी भीति[2]
है। कहा कहौं, 'सूर' के प्रभु के निगम करत जाकी कीति।

ब्रज-स्मृति

(८२)

रुक्मिनि, मोहिं ब्रज विसरत नाहीं।
वा क्रीड़ा खेलत जमुना-तट विमल कदम की छाहीं॥
गोप-बधू की भुजा कंठ धरि विहरत कुञ्जन माहीं।
अमित बिनोद कहाँ लौं बरनौं मो मुख बरनि न जाहीं॥
सकल सखा अरु नन्द जसोदा वे चित ते न टराहीं।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपाले बिछुरत बिपति सहाहीं॥
जद्यपि सुखनिधान द्वारावति तऊ मन कहुँ न रहाहीं।
'सूरदास' प्रभु कुञ्जबिहारी सुमिरि सुमिरि पछिताहीं॥

---

१. ब्रह्मा की ओर. २. भीत= दीवार

प्रभास-मिलन

(८३)

नन्द-जसोदा सब ब्रजवासी।
अपने अपने सकट साजि कै मिलन चले अविनासी॥
कोउ गावत कोउ बेनुबजावत कोउ उतावल धावत।
हरि-दरसन-लालसा-कारन विविध मुदितसब आवत॥
दरसन कियो आइ हरिजू को कहत सपन की साँची।
प्रेम मानि कछु सुधि न रही अँग रहे स्याम रँगराची[2]॥
जासोँ जैसी भाँति चाहिये ताहि मिले त्यों धाइ।
देस-देस के नृपति देखि यह प्रेम रहे अरगाई[1]॥
उमंग्यो प्रेम-समुद्र दसहुँ दिसि परमिति[3] कही न जाइ।
'सूरदास' इह सुख सो जानै जाके हृदय समाइ॥

---

(८४)

रुक्मिनि राधा ऐसे बैठीं।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी॥
एक सुभाउ एक लै[4] दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी।
एक प्रान मन एक दुहुँन को तनु करि देखिअत न्यारी॥
निज मंदिर लै गई रुकिमिनी पहुँनाई विधि ठानी। आतिथ्य.
'सूरदास' प्रभु तहँ पगु धारे जहाँ दोउ ठकुरानी॥

---

१. चुप रह गए. २. रंगे रंग मेंई.

३. [illegible] ४. लय = लग्न=लालसा.

भक्ति-सिद्धान्त

(८५)

जैसे राखहु वैसेहि रहौं।
जानत दुख-सुख सब जन के तुम, मुख करि कहा कहौं॥
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरङ्ग महागज, कबहूँ भार बहौं॥
कमलनयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं।
'सूरदास' प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं॥

---

(८६)

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो कौन हरामी[1]॥
भरि भरि उदर विषय कौं धावौं जैसे सूकर ग्रामी।
हरि जन छाँड़ि हरी-बिमुखनकी निसिदिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मो तें, सब पतितन में नामी।
'सूर' पतित कौं ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी॥

---

१. नमक-हरामी.

(८७)

सुआ,[१] चलु वा बन को रसु लीजै।
जा बन कृष्ण-नाम-अमरित-रस, स्रवन-पात्र भरि पीजै॥
को तेरों पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो[२]।
काल-मंजार[३] लै जैहै तोकों, तू कहै मेरो मेरो॥
हरि नाना रस मुक्ति छेत्र चलु, तोकों हौं दिखराऊँ।
'सूरदास' साधुन की संगति, वड़े भाग्य जो पाऊँ॥

---

(८८)

रे मन मूरख, जनम गँवायो।
करि अभिमान विषय-रस राच्यौ, स्याम सरन नहिं आयो॥ रंगा गया है
यह संसार फूल सेमर को, सुन्दर देखि भुलायो। सिम्बल
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवन्त-भजन बिन, सिर धुनि धुनि पछितायो॥

---

(८९)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं॥

---

१. यहां तोते का नाम लेकर जीव को लक्षित किया गया है।
२. संस्कृत ... काल-बिडाल

घर के कहैं बेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥
कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं।
भाइ बंधु अरु कुटुम्ब कबीला, सुमिरि सुमिरि पछितैहैं॥
बिन गोपाल कोउ नहिं अपनो, जस अपजसु रहि जैहैं।
जो 'सूरज' दुर्लभ देवन कौं, सतसंगति में पैहैं॥

---

(९०)

सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल स्वरूप॥
सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव पुनि, माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब हैं अंस गोपाल॥
करम जोग पुनि ग्यान उपासन, सब ही भ्रम भरमायो।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला-भेद बतायो॥
तादिन ते हरिलीला गायी, एक लच्छ पद बन्द।
ताको सार 'सूर सारावलि' गावत अति आनन्द॥

---

(९१)

हमैं नँदनन्दन मोल लिये।
जम के फंद काटि मुकराये, अभै अजात किये॥

भाल तिलक स्रवनन तुलसीदल, मेरे अंक बिये।
मूंड़े मूड़ कंठ बनमाला, मुद्रा चक्र दिये॥
सब कोउ कहत गुलाम स्याम को, सुनत सिरात[1] हिये॥
'सूरदास' को और बड़ो सुख, जूठनि खाइ जिये॥

---

(९२)

हरि बिन कोऊ काम न आयो।
यह माया झूँठी प्रपंच लगि, रतन सो जनम गँवायो॥
कंचन कलस विचित्र रोप करि, रचि पचि भवन बनायो।
ता में ते तेहि छिनही काढ्यो, पल भरि रहन न पायो॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी, यह कहि त्रिया धूति धन खायो।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो॥
बोलि बोलि सब बोलि मित्रजन लीनों सो जिहि भायो।
पर्‌यो काज जब अंत की बिरियां, तिनहीं आनि बँधायो॥
आसा करि करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायो।
तोरि लयो कटिहू को डोरा, तापर बदन जरायो॥
पतित-उधारन गनिका-तारन, सो मैं सठ बिसरायो॥
लियो न नाम नेकहू धोखे सूरदास पछतायो॥

---

1. दिल ठण्डा होता है।

(९३)

जो तू राम नाम चित धरतौ।
अब को जन्म आगलो तेरो, दोऊ जनम सुधरतौ॥
जम को त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरो परतौ।
तंदुल घिरत सँवारि स्याम कौ, संत परोसो करतौ॥
होतो नफा साधु की सङ्गति, मूल गाँठ ते टरतौ।
'सूरदास' वैकुण्ठ-पैंठ में कोउ न फेंट पकरतौ॥

---

(९४)

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौं पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत॥
आँखिन अन्ध स्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत॥
गङ्गाजल तजि पियत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत॥
रामनाम बिन क्यों छूटौगे, चन्द्र गहे ज्यों केत।
'सूरदास' कछु खरच न लागत रामनाम मुख लेत॥

---

(९५)

तब बोले जगदीस जगतगुरु, सुनो सूर! मम गाथ।
तव कृत मम जसु जो गावेगो, सदा रहै मम साथ॥

धरि जिय नेम सूर सारावलि, दच्छिन उत्तर काल।
मन बांछित फल सब ही पावैं, मिटै जनम जंजाल॥
सीखे सुनै पढ़ै मन राखै, लिखै परम चित लाय।
ताके संग रहत हौं निसिदिन, आनँद जनम बिहाय॥
सरस रंगीली लीला गावैं, जुगल-चरन चित लावैं।
गर्भवास बंदीखाने में, सूर बहुरि नाहिं आवैं॥

---

(९६)

अबके नाथ मोहिं उधारि
मग नहीं भव-अम्बुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहरति रंग।
लिए जात अगाध जल में गहे ग्राह-अनङ्ग॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार॥
काम क्रोध समेत तृस्ना, पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत, नाम नौका ओर॥
थक्यौ बीचि बिहाल बिह्वल, सुनो करुनामूल।
स्याम! भुज गहि काढ़ि लीजै, 'सूर' व्रज के कूल॥

---

(९७)

प्रभु, मेरे गुन अवगुन न बिचारो।
कीजै लाज सरन आये की, रबिसुत-त्रास[१] निवारो॥
जोग जग्य जप तप नहिं कीयो, बेद बिमल नहिं भाख्यो।
अति रस लुब्ध स्वान जूंठनि ज्यों कहूँ नहीं चित राख्यो॥
जिहि जिहि जोनि फिस्यो संकटबस, तिहि तिहि यहै कमायो।
काम क्रोध मद लोभ ग्रसित भये, परम विषय विष खायो॥
जो गिरिपति-मसि घोरि उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोस लिखैं बसुधा भर, तऊ नहीं मित नाथ॥
कामी कुटिल कुचील[२] कुदरसन, अपराधी मतिहीन।
तुमहि समान और नहिं दूजो, जाहि भजौं ह्वै दीन॥
अखिल अनन्त दयालु दयानिधि अविनासी सुखरास।
भजन प्रताप नहीं मैं जान्यो, पर्‌यो मोह की फाँस॥
तुम सर्वग्य सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र 'सूर' बूड़त है लीजे भुजा पसारि॥

---

(९८)

दो में एकौ तौ न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाए, बृथा बिहाइ गई॥

---

१. सूर्य-पुत्र के (कालके) भय से.
२. कुचैला.

ठानी हुती और कछु मन में, औरै आनि ठई।
अविगत गति कछु समुझि परति नहिं, जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुँब मिल, निसिदिन होति खई।
पद-नख-चन्द-चकोर विमुख मन खात अँगारमई॥
विषय-विकार दवानल उपजी, मोह-बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो, अजहुँ न टेव गई॥
कहा होत अबके पछताने, होनी सिर बितई।
'सूरदास' सेये न कृपानिधि, जो सुख सकलमई॥

---

(९९)

जग में जीवत ही को नातो।
मन बिछुरे तन छार होइगो, कोउ न बात पुछातो॥
मैं मेरो कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातो।
विषयासक्त रहत निसिबासर, सुख सीरो दुख तातो।
साँच झूँठ करि माया जोरी, आपन रूखौ खातो।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो॥

---

(१००)

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि-चरनारविन्द उर धरौ॥
हरि की कथा होइ जब जहाँ॥
गङ्गा हू चलि आवै तहाँ॥
जमुना सिंधु सरस्वति आवैं।
गोदावरी विलम्ब न लावैं॥
सर्व तीर्थ को बासा तहाँ।
सूर हरि-कथा होवै जहाँ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

शब्दार्थ

१—राई=राय, राजा ।
मूक=गूंगा ।
छत्र=राज-छत्र ।
पाई=चरण ।
२—अकरन करन करै=असंभव को संभव कर दिखाता है ।
सराप=शाप ।
उच्छेद–विनाश, ध्वंस ।
नरहरि=नृसिंह भगवान् ।
भानुसुत=सूर्य के वीर्य से और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न कर्ण ।
वैरोचन को सुत=विरोचन का पुत्र, बलि ।
पुँश्चली=व्यभिचारिणी, कुलटा ।
मुकति=मुक्ति, मोक्ष ।
३—उघरि=खुल कर ।
बिरद=बाना । यश । प्रण ।
बीरा=पान का बीड़ा ।
४—हरि-विमुख=नास्तिक ।
अरगजा=चंदन, कपूर, खस आदि सुगन्धित चीज़ों का लेप ।
मर्कट=बन्दर ।
पाहन=पाषाण
खहि=धूल, मिट्टी ।
छंग=(उछङ्ग) गोद, अङ्क ।
निषंग=तरकस ।
५—चोलना=कुरते की तरह का एक बहुत लम्बा पहनावा ।
महामोह=घोर अविद्या वा अज्ञान
पखावज=मृदङ्ग, पक्ष वाद्य
नाद=शब्द ।
घट=शरीर
काछि=पहनकर
६—कमलनैन=कमल=जैसे नैन वाले विष्णु भगवान् ।
करील=एक कटीली झाड़ी, जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं । इसके फलों को टेंटी कहतेहैं ।
छेरी=बकरी
७—मकरन्द=पराग
तेई=वे ही
८—गुर=गुड़
कमललोचन=कमल जैसे नेत्र वाले, श्रीकृष्ण ।
९—ऐसे ऐसे=व्यर्थ के काम करते करते ।

वैसे=बैठे हुए।
अनैसे=बुरा, ख़राब।
ईश्वरता=ऐश्वर्य, वैभव।
बाजीगर=जादूगर, इन्द्रजाली
१०—अपुनपो=आत्म-भाव, आत्म स्वरूप।
काँच-मन्दिर=शीशा जड़ा हुआ मकान।
भूसिभूक=भूक कर।
हरि सौरभ=कस्तूरी।
तसकरि=चोर।
केहरि=सिंह।
फटिक=स्फटिक पत्थर।
अरयो=अड़गया।
नलिनी=कमलनी, कमल।
सुबटा=मृणाल तन्तु।
११—परितिग्या=प्रतिज्ञा।
भीर=कष्ट।
सुदर्सन=वह चक्र जिसे विष्णु धारण किया करते हैं।
जारौं=जला देता हूँ।
१२—कोपि=क्रोधित होकर।
भायो=मन चाही बात, इष्ट।
उन्नत=ऊँचे, पुष्ट।
स्वेद=पसीना।
पदमज=कमलसेउत्पन्न ब्रह्मा।

१३—महर=ग्वाल।
ठहर-ठहर=ठौर ठौर।
फूले=प्रसन्न।
बंदीजन=भाट लोग।
बंदनवारे वंदनमालाएँ; आम के पत्तों और फूलों की मालाएँ, जो उत्सव के अवसर पर दरवाज़े पर बांध दी जाती हैं।
पिछले पहर=पूर्व जन्म।
कारे=काले।
जलधर = मेघ।
हलधर = श्रीकृष्ण के जेठे भाई बलरामजी।
कंस-खेद = कंस का दिया हुआ दुःख।
बहर = बाहर।
१४—मेलत = डालते हैं।
पालने = हिंडोले में।
बट = यहाँ उस वट वृक्ष से आशय है जिसके आश्रय, प्रलय काल के समय, भगवान् विश्रान्ति लेते हैं।
झेलत = हाथ पैर हिलाते हैं
दिगदंतौ = दिशाओं के हाथी भी।

सकट = गाड़ी; शकटासुर से तात्पर्य है।

१५—वारी = बलिहारी

डीठि न लागै = नज़र न लग जाय।

मसिबिन्दा=काजल की बिन्दी डिठौना।

नान्ही = छोटी।

१६—कुटिल = टेढ़ी,

बिकट = टेढ़ी घूंघर वाली।

सीपिज = मोती।

लिलार = ललाट, माथा।

सुरगुरु = बृहस्पति।

लोल = चंचल।

रद-छद=ओष्ठ, ऊपर का अधर।

लर = लड़।

१७—ईश=शिव।

विरंचि = ब्रह्मा।

असित=काला।

सित = सफ़ेद।

अलि=भौंरा।

उरसति = हिलाती है, उथल पुथल करती है।

पदमासन = ब्रह्मा।

पन्नगपति = शेषनाग।

१८—कनक=सुवर्ण।

कुलहि=टोपी।

मघवा=इन्द्र।

धनुष = इन्द्र-धनुष।

सुदेस = सुन्दर।

चकुर = बाल।

मंजुल = सुन्दर।

रुनाई=अरुणाई, लाली।

सनि=शनि, जिनका रंग काला है।

गुरु-असुर=शुक्र जिनका रंग सफ़ेद है।

देवगुरु=बृहस्पति, जिनका रंग पीला है।

भौम=मंगल, जिनका रंग लाल है।

विद्यु = बिजली।

खंडित-बचन = तोतली बातें।

जल्प = कथन, व्यर्थ की बात।

घुटुरुन—घुटनों के बल।

१९—दुलराइ=दुलार करके, प्यार करके।

जोइ-सोइ=जो मन में आया वही।

निदरिया = नींद।

कान्हा=कृष्ण।

सैन=इशारा।

अमर=देवता।

२०—जसुमति=यशोदा।

द्वैक=दो एक।

तुतरै=तोतले।

झरै=निकलेंगे।

ररै=रटे, पुकारे।

अंचरा=अंचल।

अँधवारि=आँधी।

घहरै=गरजता है।

२१—अरबराइ=अड़बड़ कर, लटपटा कर।

बकावत=बार बार ज़ोर से कहलाते हैं।

दँतुली=छोटे छोटे दाँत।

महर=ग्वाल;नन्दसे आशय है।

२२—धौरी=सफेद रंग की गाय कपिला।

पय=दूध।

झंगुली=छोटे बच्चों के पहनने का ढीला कुरता।

कानलगि=कान के पास मुँह लगाकर, धीरे से।

दाऊ=बलरामजी।

ब्यैहौं=ब्याह दूँगी।

सौंह=सौगंद।

२३—ओकि=अंजली।

झलमलात—चमचमाता है।

निपट=विलकुल।

बरज्यौ=रोकने पर।

हौं=मैं।

बौराए न बहौंगौ=भुलावा देने से न मानूंगा।

दाप=दर्प।

२४—बंसीवट=एक स्थान जहाँ पर बट वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण बंशी बजाते थे।

सांझपरे=संध्या होने पर।

बहियन को=बाहों का, हाथ वाला।

छींको=सीका, सिकहर।

भोंरी=भोली सीधी सादी।

भेद=कपट।

कमरिका=कंबल का छोटा सा टुकड़ा।

२५—कुमुद=कुई।

भृङ्ग=भौंरा।

तमचुर=मुरगा, कुक्कुट।

रोर=शब्द।

खिरकन में=(खरकन में गाय भैंस बाँधने के स्थानों में।

बछरा = बछड़ा ।
राँभति=रंभाती है,बोलती हैं।
विधु=चन्द्रमा ।
२६—आतुर=अधीर ।
तिमिर = अँधेरा ।
सुछंद=स्वछन्द, बे रोक टोक ।
मकरंद = पराग, रस ।
२७—बल = बलरामजी ।
काढ़त = निकालती है, संवारती है ।
न्हवावत=नहलाती धुलातीहै ।
ओछत=पोंछती है ।
भ्वै = ज़मीन पर ।
काचो = कच्चा ।
पचि पचि = हैरान हो कर, जी तोड़ परिश्रम करके ।
हलधर = बलरामजी ।
२८—खिझायातंगकिया=चिढ़ाया ।
रिस = गुस्सा ।
हौं = मैं ।
तातु = पिता ।
कत = क्यों, कैसे ।
बलवीर = बलरामजी ।
रीझे = प्रसन्न हो रही है ।
चबाई = चुग़लख़ोर, व्यर्थइधर की उधर लगाने वाला ।
धूत=धूर्त ।
सौं—सौगंद ।
२६—घिवराते=चारों ओर चक्कर लगवाते हैं, पशुओं को इकट्ठा कराते हैं ।
पत्याहि=विश्वास कराती है ।
सौंह = सौगंद ।
बहराद = बहला कर ।
अति = अधिक ।
रिंगाइ = पैदल चला कर ।
३०—भँवरा = लट्टू ।
चक=चकरी ।
अरेपर=आलापर, ताक़पर ।
बोलि लिये=बुला लिए ।
पौर=ड्योढ़ी ।
जोरी=जोड़ी ।
मोरी = मोड़ कर ।
तृन डारति तोरी=दांत से दबा कर तिनका तोड़ तोड़ कर फैंकती है, जिस से कहीं नज़र न लगजाय ।
३१—कनियां=गोद, उछंद ।
निछनियां = बिलकुल, ख़ालिस निष्कपट ।
मो कारन=मेरे लिये ।
बलि = बलैया लेती हूँ ।

जोरी=जोड़ी।

३२—बारे=छोटे से बालक।

तनिक तनिक=छोटे छोटे, नन्हें नन्हें।

चारन=चराने को।

रेंगत=चलते-चलते।

मांझ=में।

टेक=हठ।

३३—ढुटौना=लड़का, छोरा।

अविगति=अज्ञात, अनिर्वचनीय।

अविनासी=नित्य, अक्षर।

ऐसेउ गुन=ऐसी भी बातें।

३४—जियरे में=जी में, प्राण में।

हियरे में=हृदय में।

रसना=जीभ।

नन्दवारो=नंद नन्दन श्रीकृष्ण।

उरजन में=स्तनों में।

३५—क्रम=कर्म।

नैकु=तनिक भी।

चिकनियाँ=छैल, बनेठने।

घास=तिनका, तुच्छ।

त्रास=डर।

सूरजदास=सूरदास।

३६—प्रकृति=आदि शक्ति।

पुरुष=परब्रह्म।

उपनिषद्=ज्ञान-मूलक ग्रन्थ, जैसे; ईश, केन, कठ, छान्दोग्य आदि।

सुख-कारन=अखंड ब्रह्मानन्दानुभव के लिये।

३७—बन बिहार=बन की लीला अथवा जल-क्रीड़ा।

सिथिल=ढीले-ढाले; रतिकेलि से परिश्रान्त।

बागे=वस्त्र।

मदन=कामदेव।

प्रजारन लागे=जलाने लगे।

अंसु=कंधा।

दागे=चिन्हित।

कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष; स्वर्ग का एक वृक्ष, जो सब इच्छाओं को पूर्ण कर देता है।

पागे=पगे हैं, लीन हैं।

३८—गज=जंघाओं से तात्पर्य है।

सिंह=कटि से तात्पर्य है।

हरि=सिंह (कटि)।

सरबर=नाभि से आशय है।

गिरिवर=वक्षस्थल अथवा स्तनों से आशय है।

कंज=मुख से आशय है।

कपोत=कबूतर; कंठ से तात्पर्य है।

पुहुप=पुष्प; चिबुक से तात्पर्य है।

पल्लव=अधरों से तात्पर्य है।

सुक=नासिका से तात्पर्य है।

मृगमद = कस्तूरी।

खंजन = नेत्रों से आशय है।

धनुष = भृकुटी से आशय है।

मनिधर नाग=रत्नजटित भूषण सहित बेणी से तात्पर्य है।

अति = अधिक

[नोट—यह पद दृष्टि कूटक है। इसमें अनेक उपमाओं द्वारा राधिका जी का नख-शिख-श्रृङ्गार वर्णन किया गया है।]

३९—आहि = है।

थापी = स्थापित की, नियंत्रित की।

थिर चर = जड़ जंगम, जड़ चैतन्य।

आठ बदन=आठ छेद वाली।

विपुल = बहुत।

विभूति = ऐश्वर्य।

थान = स्थान, आसन।

श्रीपति=लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान्।

मराल = हंस।

प्रसंस = प्रशंसनीय।

मानस-हंस = मन रूपी हंस।

विमान-हंस=इसनेसब गोपियों के मन पर अधिकार कर लिया है।

बैसी = बैठी।

रैन=रज।

कुलव्रत=वंश-मर्यादा।

ताग=यज्ञोपवीत, जनेऊ।

४०—भोर=भूले के, विदेह।

बरजि=रोककर।

४१—नटवर=नाट्यकला में महा प्रवीण।

मकराकृत=मछली के समान।

कुटिल=टेढ़ी।

बिबि = दो।

पूरत = भरते हैं।

गौरी = एक रागिनी जो संध्या समय गाई जाती है।

सुरभी = गाय।

कनक मेखला=सोने की करधनी।

माधुरी = शोभा

४२—भ्रम = अविद्या, अज्ञान ।
निगम = वेद ।
अगम = दुर्लभ ।
कृपा = भगवत कृपा ।
रस = (ब्रह्मानन्द) परमानन्द ।
भाव = प्रेमपरा-भावना ।
दम्पति = श्रीराधा-कृष्ण ।

४३—कौशल = रचना-चातुर्य ; कौतुक ।
सौदामिनि = बिजली ।
बग = बगुला ।
सुदेस = सुन्दर ।
जलधर = मेघ ।
बनमाला = रंग बिरंगे फूलों की लम्बी माला ।
दूरि करी = परास्त कर दी ।

४४—हलधर = बलराम जी ।
विषान = हिरण का सींग, जिसे ग्वाल लोग बजाया करते हैं ।
स्रिंगी = सींग ।
कलेऊ = कलेवा ।
अघैया = अघा कर, पेट भर ।

४५—मधुपुरी मथुरा ।
सोध = पता, स्मरण ।
तात = पिता ।
गुसाईं = प्रभु; पिता-तुल्य
नात = नाता, सम्बन्ध ।
उतर = उत्तर ।
खीन = क्षीण, दुर्बल ।
बयारि = हवा ।
पता = पत्ता ।

४६—परपर = सनातन की रीति ।
लाभरु = लाभ और ।
बबा = बाबा ।
जलपै = व्यर्थ बकबाद करे ।
अध अध पद = आधा-आधा क़दम ।
पैठो = प्रवेश किया ।
कुलिस = वज्र ।

४७—चारौ = दो ज्ञान नेत्र और दो चर्म नेत्र; ऊपर की और भीतर की आँखें ।

४८—अब लै भांड़े भरति = अब फूट फूट कर रोती है ।
दावरी = रस्सी ।
कत = क्यों ।
विपरीत = प्रतिकूल, अनिष्ट ।
अरति = अड़ती है, ठानती है टेक बाँधती है ।

४९—परतीति = प्रतीति, विश्वास
कछुबै = कुछ भी ।
मोचत = छोड़ते हो, बहाते हो

सबै = समय ।

[नोट—यह पद श्रीगोस्वामी तुलसीदास-कृत "कृष्ण गीतावली" में भी मिलता है । केवल उसमें दो चार शब्दों का हेरफेर है । वास्तव में यह पद किस का रचा हुआ है इसका निर्णय हम विचारशील पाठकों पर छोड़ते हैं]

४६—अँगना = आँगन; घर ।

प्रानधना = प्राणधन,प्राणों से भीप्यारे ।

घना = बहुत से ।

मगना = प्रेम-मग्न ।

सपना = स्वप्न के समान झूठे।

५१—नेत = मथानीं की रस्सी ।

गुन = विचार, विचार कर ।

सूल = दुःख ।

उरहन = उपालंभ !

मुनि मनसहनगहै = मुनियों के मन में भी नहीं आ सकता ।

५२—सलोने = सुन्दर ।

राते राते = लाल-लाल;पलाश के पुष्पों से तात्पर्य है ।

डार = डाली, शाखा ।

फूलझरी = फूल-झड़ी; बच्चों के खेलने की एक प्रकार की आतिशबाजी, जिसमें से फूलों की तरह आग की चिनगारियाँ निकलती हैं ।

पनिघट = पानी भरने का घाट ।

नाउं = नाव, नौका ।

५३—अलिसुत = भौंरे का बच्चा; भौंरा ।

जलसुत = मृग ।

नाद = शब्द; राग, गौत ।

चलत = मथुरा जाते समय ।

५४—कुरंग = मृग ।

बधिक = बहेलिया ।

परेवा = कबूतर ।

पपीहा = चातक ।

५५—इकसार = एक से, एक ही प्रकृति के ।

सुहाये = सुन्दर ।

अंतर = हृदय ।

चटसार = पाठशाला ।

लिलार = ललाट, माथा ।

नघि आवै = नख जाय, पार हो जाय ।

५६—हित = प्रेम ।
जलधर = मेघ ।
पौषै = पालन-पोषण करता है, पुष्ट करता है ।
आनै = दूसरे को ।
कारो = काला ।
कृतहिं = किये हुए को, उपकार को
५७—उपपात = अनिष्ट, विघ्न ।
बकी = बकासुर; एक बगुला भेषधारी राक्षस जिसे श्री कृष्ण ने मारा था ।
अघासुर = एक सर्प भेषधारी राक्षस जिसे श्री कृष्ण ने मारा था ।
पिंजरा = पिंजड़ा ।
रूंधि राखे = बंद कर रखे हैं ।
पीत वरन = पीले रंग के (दुर्बलता के कारण) ।
कृस = दुर्बल ।
गात = शरीर ।
अवलंबिय = सहारालें ।
नाट = नकल, स्वाँग ।
दावानल = बन में लगी हुई आग । एक बार व्रज के एक बन में आग लग गई । गोपों और गौवों का आर्त्तनाद सुनकर श्रीकृष्ण उस प्रचण्ड आग का पान कर गये
कोट = समूह, राशि ।
भये एक ही पेट = एक सलाह बांधकर इकट्ठे हो गये हैं ।
सत्वर = शीघ्र ही ।
हेट = नीचा ।
५८—देवकी = वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता ।
माया = कृपा, प्रेम ।
टेव = आदत, स्वभाव ।
उवटना = बटना, शरीर पर मलने का सरसों, तिल चिरौंजी आदि का लेप ।
तातो = गरम
अलक लड़ैतो = दुलारा, लाड़ला ।
५९—हौं = मैं ।
जुहार = प्रणाम, पैर छूना ।
बारक = एकबार ।
धाई = धाय ।
६०—बरसाना = राधिकाजी की जन्म-भूमि ।
वृषभानु = राधिकाजी के पिता ।

दिन दिन को = नित्य का, सदा का।

एक मन बसत = एक गोपी अर्थात् 'राधा' हमारे मन में बसती है।

६१—जोग कथा = योगाभ्यास का उपदेश।

परमारथ = मोक्ष मार्ग।

जुगति = युक्त।

मुकति = मुक्ति, मोक्ष।

वारौं = निछावर करती हूं।

निगुण = सत्त्व, रज और तमोगुण से परे निराकार ब्रह्म।

बहाऊँ = छोड़ दूँ।

६२—घट = शरीर।

अकाश = (आकाश) शून्य स्थान, निराधार ध्यान।

वरू = चाहे, भले ही।

राजिव = कमल।

उदास = निरपेक्ष।

६३—स्वांति = स्वातिनक्षत्र। कहते हैं इसी नक्षत्र में बरसी हुई बूँद को पपीहा पीता है। जब तक यह नक्षत्र नहीं आता तब तक वह प्यासा ही 'पी, पी' रटता रहता है।

ताते = तिस से।

कुरंग = मृग।

व्याध = बहेलिया।

सर = (शर) बाण।

निमिष = पलक।

जोवत = देखते हुए।

वपु = शरीर।

रीते = खाली।

कीजै = लिये।

६४—अलि = भौंरा; यहाँ उद्धव से आशय है।

नीके = भलीभाँति।

बनाउ = बनावट, रचना।

बारक = एक बार।

ब्यौ = रोज़गार।

६५—सिगति = ठंडी होती हैं, शान्त होती हैं।

निमेष = पलक।

बाइ = वायु।

तन = ओर।

सलाका = अंजन लगाने की सींक।

आरति = पीड़ा, कष्ट।

६६—बास = गंध।

मधुप = भौंरा ।

६७—जोग-जोग = योग के योग्य, योग के पात्र ।

भसम = राख ।

अनल = आग ।

दाहीं = जल रही हैं ।

अपु = आपा, अंतःकरण ।

६८—जल समूह = आंसुओं की अबिरल धारा ।

ठाऊ = स्थान ।

पछार = मूर्छा ।

वारि = पानी ।

६९—जोवति = देखती हैं ।

पावस = वर्षा ।

विदमान = (विद्यमान) प्रस्तुत ।

७०—परमारथ = मोक्ष ।

निहचै = निश्चय, सिद्धान्त ।

सतभाय = सत्य भाव, निष्कपटता ।

कंचन = सोना ।

कांचे = कांच ।

पर = लौलीन, अधीन ।

सौं = सौगन्द ।

नेम = नियम, ज्ञानमार्गीय-सिद्धान्त ।

फूले = आनन्द-मग्न ।

खिन = क्षण ।

पां = पैर ।

छाके = छके हुए ।

सुरभी = गाय ।

अभिसारी = विहार करने वाले प्रेमानुरागी ।

हुते = थे ।

पै = पास ।

उमँग्यो = भर आया ।

७१—वंसीवट = [२४ वें पद की पहली टिप्पणी देखिये]

उसास = लंबी आह ।

सोग = शोक ।

७२—स्रवनमूँदि = कानों पर अँगुली रखकर, अनसुना करके ।

हुत = था ।

निपट = बिलकुल ही ।

बन-विनोद = बन विहार ।

पराई = पराधीन ।

७३—कारे = काले ।

जोवत = देखते हैं ।

सकारे = सबेरे ।

पनारे = धाराएँ, प्रवाह ।

गोसुत = बछड़े ।

७४—बिहात = बीतते हैं ।

गात = शरीर ।

मलिन=उदास ।
सिसिर-हिमहत=जाड़े में पाला के कारण मुरझाये हुए ।
पात=पत्ता ।
कुसलात=कुशल-समाचार ।
आतुर=अधीर ।
पिक=कोइल ।
चातक=पपीहा ।
बायस=कौआ ।
वायस...खात=कौए, आगे रखे हुए भोजन को भी नहीं करते हैं, क्योंकि स्त्री पुरुष उनके द्वारा संदेसा भेजने के लिए उन्हें बहुत तंग किया करते हैं ।
उहि=उस ।
७५—तन=तरफ़ ।
हित=प्रेम ।
सिरात=प्रसन्न होते हैं, सुख पाते हैं ।
७६—बापुरी=गरीबनी; बेचारी ।
निनारे=न्यारे, अलग ।
बदन=मुख ।
सुधानिधि=चन्द्रमा ।
मधुबन=मथुरा ।

जोइ-मग=रास्ता देखते देखते, प्रतीक्षा करते करते ।
सूरज=सूरदास से तात्पर्य है ।
७७—बस=अधीन ।
दिनकर=सूर्य ।
लालन=प्यारे श्रीकृष्ण पर ।
मुकुलित=प्रफुल्लित
७८—रंगराती=प्रेम में रंगी हुई ।
रूखी=शुष्क, नीरस ।
अवधि=आने का नियत समय ।
झूखी=(झुकी) क्रोधित हुई; रिसानी ।
दूखी=दुखी हुई ।
कत=क्यों ।
हठ=ज़बरदस्ती ।
पतूखी=एक पत्ते का छोटा सा दोना ।
७८—अरघ=षोड़शोपचार में से एक; वह जल जिसे पुष्प, अक्षत आदि के साथ देवता के आगे गिराते हैं ।
पांवड़े=पायंदाज, पैर रखने के लिये फैलाया हुआ कपड़ा ।
जादवपति=यादवों के स्वामी श्रीकृष्ण ।
मर्दन=उबटन, बटना ।

चोवा = चंदन, केसर, उशीर आदि से तैयार किया हुआ एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ ।

कुमकुमा = लाख का बना हुआ गोल लट्टू, जिसमें होली पर, गुलाल अबीर, भर कर लोग एक दूसरे पर मारते हैं ।

परिमल=सुगंध ।

आदात = न देनेवाला, कंजूस ।

तंदुल = चावल ।

सम=सान्त्वना, समाधान, धीरज ।

८०—कत = क्यों, कैसे ।

बिचरै = बिचारै ।

फुरै = पूरा उतरता है, सच ठहरता है ।

८१—पुरातन प्रीति = उज्जैन में, सुदामा श्रीकृष्ण के सहपाठी थे । वहाँ दोनों मित्रों की ख़ूब बनती थी । यहां उसी पुरानी मित्रता से आशय है ।

तन = तरफ़ ।

इती=इतनी, ऐसो ।

भुस पर की सी भीति=वह दीवार जो भुस या पयाल की नींव पर उठाई गई हो भला ऐसी दीवार कब तक ठहर सकती है ? तात्पर्य यह कि, संसार में जितने सुख के साधन हैं, यदि उनका आधार भगवत्-परायणता नहीं है, तो वे तुरन्त ही नष्ट हो जायँगे । क्षणभंगुर ।

निगम = वेद ।

कीर्ति = कीर्तन, यशोगान ।

८२—अमित = अगणित, अपार ।

टराहीं = टलते हैं, भूलते हैं;

द्वारावती = द्वारिकापुरी ।

८३—सकट = बैलगाड़ी ।

अविनासी=नित्य, परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ।

बेनु=बाँसुरी ।

उतावल=जल्दी-जल्दी ।

लालसा = उत्कण्ठा ।

रंग राची=प्रेम में मग्न ।

रहे अरगाइ = चुप हो गये, कुछ कहते न बना ।

परमिति=परिमाण, हद।

८४—ठकुरानी=महारानी।

८५—जन=सेवक जीव।

मुख करि=मुँह से।

भार बहौं=बोझा ढोता हूँ।

८६—कुटिल=दुष्ट, कपटी।

नौन् हरामी=(नमकहरामी) बेइमान, कृतघ्न।

विषय=इन्द्रियों के सुख; भोग-विलास।

सूकर ग्रामी=गाँव का सुअर जो विष्ठा खाता है।

नामी=उजागर, शिरोमणि।

ठौर=स्थान, शरण।

८७—सुआ=जीव से तात्पर्य है।

केरो=का।

मजार=बिल्ली।

८८—रांच्यो=रंगा रहा, पगा रहा।

सेमर=शाल्मलि।

कमायो=(सत्कर्मों का) संचय किया।

धुनि-धुनि=पीट-पीट।

८९—तन तरुवर=शरीररूपी सुन्दर पेड़।

पात=पत्ते।

घनेरी=अधिक।

कबीला=स्त्री; परिवार।

सूरज=सूरदास।

९०—जुगलस्वरूप=श्रीराधाकृष्ण।

सकल तत्व=पंच महाभूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच तन्मात्रा, आत्मा। किसी के मत से २४, किसी के मत से २५ और किसी के मत से २६ तत्व हैं।

श्रीपति=लक्ष्मीपति विष्णु जो बैकुण्ठ में रहते हैं।

नारायण=नारायण जो क्षीर सागर में शेषनाग पर विराजमान हैं।

गोपाल=महा विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण।

करम=कर्म-कांड।

जोग=योगाभ्यास।

श्रीवल्लभ=महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य। इन्हीं महाराज ने विष्णुस्वामि संप्रदाय के अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैत' मत का प्रतिपादन किया है।

सूरदासजी इन्हीं के पट्ट शिष्य थे।

तत्व=सार स्वरूपा प्रेम परा-भक्ति का गूढ़तम रहस्य।

९१—मुकराये=छुड़ाया।

अजात=जन्मरहित, मुक्त।

दिये=उत्पन्न किये, लगा दिये।

मुद्रा=चिन्ह विशेष, छाप।

चक्र=विष्णु का आयुध, जिस की छाप वैष्णव लोग अपनी भुजाओं पर लगाते हैं।

सिरात=ठंडा होता है, शान्त होता है।

९२—प्रपंच=संसार का जंजाल।

रोप करि=स्थापित कर।

पचि=जीतोड़ मेहनत करके।

त्रिया=स्त्री।

धूति=धूर्त।

मोरिमुख=मुख मोड़कर, हाव भाव दिखाकर, कटाक्ष मारकर।

अंत की बिरियाँ=मृत्यु-समय।

बँधायो=अर्थी पर बाँध कर रक्खा।

लाड़ लड़ायो=प्यार-दुलार किया।

गनिका=वेश्या; पिङ्गला नाम की वेश्या से अभिप्राय है।

९३—तंदुल=चांवल।

घिरत=(घृत) घी।

परोसो=थाली या पत्तल भर भोजन।

पैंठ=हाट, बाज़ार।

फेंट=कमर में बँधा हुआ कपड़ा; फेंट पकड़ने का अर्थ इस प्रकार पकड़ना है कि जिससे कोई भाग न पाये।

९४—तीनौपन=बचपन, जवानी और बुढ़ापा।

ऐसे ही=व्यर्थ ही।

गंगाजल=भगवद्भक्ति से अभिप्राय है।

कूप जल=संसारी कामना से अभिप्राय है।

प्रेत=भूत।

केत=केतु, नौ ग्रहों में से एक।

९५—गाथ=बात।

कृत=रचित।

जंजाल=झंझट, प्रपंच।

मनवांछित=इच्छानुसार, मन चाहा।

परम चित लाय=एकाग्रचित होकर।

जुगल=श्रीराधाकृष्ण।

बहुरि=फिर।

९६—भव अंबुनिधि=संसार-रूपी समुद्र।

मुरारि=मुर नामक दैत्य के संहार कर्ता श्रीकृष्ण।

ग्राह-अनंग=कामदेवरूपी मगर

मोट=गठरी।

सिवार=पानी में फैलनेवाली जाल ऐसी एक वनस्पति।

नाम=भगवान् का नाम।

कूल=किनारा।

९७—रविसुत=यमराज।

निवारो=दूर करो, नाश करो।

लुब्ध=लोलुप।

स्वान=कुत्ता।

गिरिपति=हिमालय पर्वत।

मसि=स्याही।

उदधि=समुद्र।

सुरतरू=कल्पवृत्त।

ममकृत=मेरे किये हुए।

बसुधा=पृथ्वी मात्र पर।

कुचील=मलिन, मैलाकुचैला।

अखिल=सर्व।

९८—वृथा बिहाइ गई=आयु व्यर्थ ही बीत गई।

ठानी हुती=निश्चय किया था।

अविगति=अनिर्वचनीय।

दई=दैव, परमात्मा!

खई=विनाश, झगड़ा।

दवानल=(दावानल) बन में लगी हुई आग।

मोह बयार=अज्ञान रूपीवायु।

बई=बही, चली।

टेव=आदत।

९९—पुछातो=पूछनेवाला।

पंच-सुहातो=जो बात समाज को अच्छी लगे।

विषयासक्त=भोग-विलास में लिप्त।

सीरो=ठंडा, सुखदायक।

तातो=गरम, दुःख दायक।

माया=धनदौलत।

जोरी=(जोड़ी) जमा की।

१००—चरनारविन्द=कमल-रूपी चरण।

बासा=निवास।

———

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	५	बाँस	बान
५	१४	सुवटा	सुवना
६	१६	जान	आन
८	७	तँतुली	दँतुली
१०	५	भाम	भौम
”	१५	सोच्त	सोवत
”	”	मीन	मौन
११	२	घुटुअन	घुटुरुवन
१२	१०	सों	सौंह
१३	१	में	मैं
२१	१०	विधि	विवि
”	११	अथर	अधर
२२	४	नियम	निगम
२३	४	स्रंगी	स्रिंगी
२५	१४	व्यथा में	वृथा मीन
२७	८	मिलन	मिलत
२८	१३	अपना	अपनो
”	१५	कृपहिं	कृतहिं
३२	१२	भारत	मारत
३३	११	सुनि मेष	सु निमेष
”	१३	ध्यान	ग्यान
३७	४	कुछ	कछु
३८	७	सवारे	सकारे